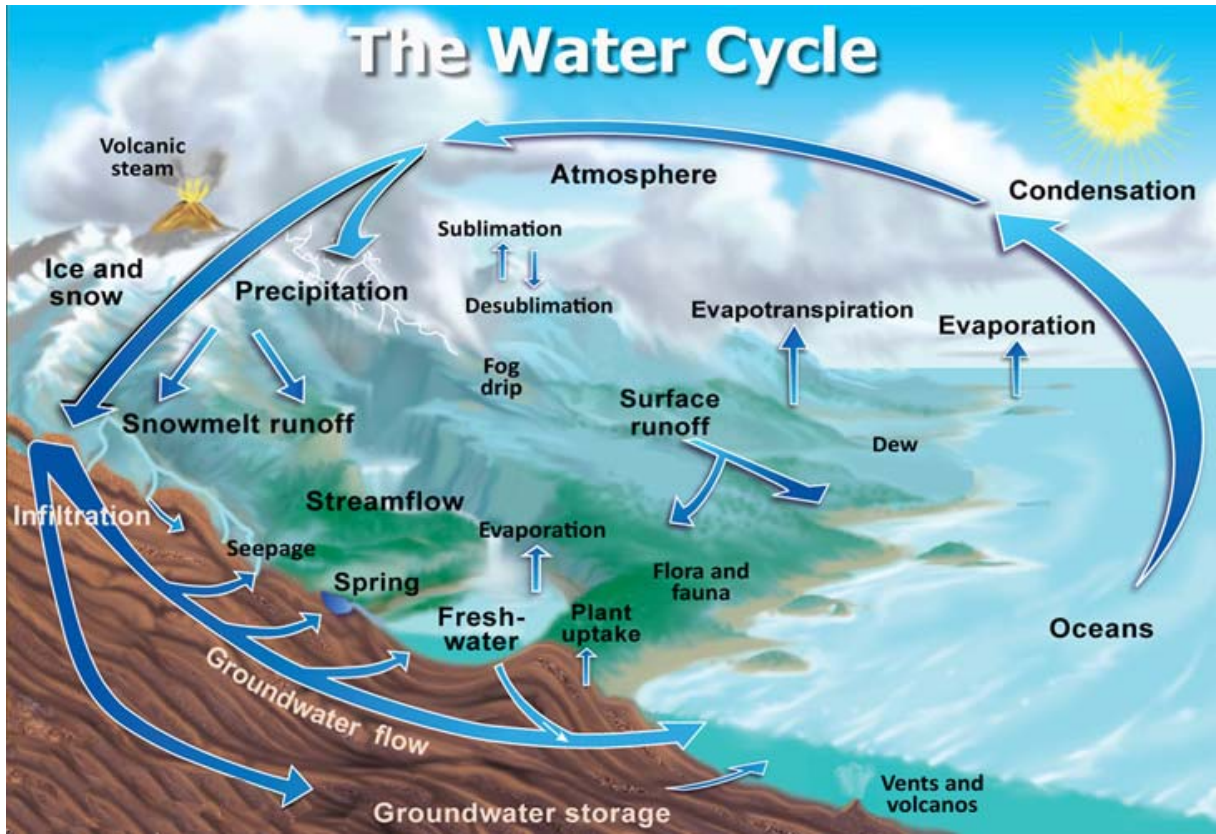


अध्याय-2 जलविज्ञानीय चक्र

जलविज्ञानीय चक्र, जल विज्ञान की एक मौलिक और महत्वपूर्ण अवधारणा है। जलविज्ञानीय चक्र में सम्पूर्ण वायुमंडल (गैसीय आवरण), जलमंडल (सतह और अधस्तल जल), स्थलमंडल (मिट्टी और चट्टाने), जीवमंडल (पौधे और जानवर), और महासागर सम्मिलित हैं। जल, पृथ्वी प्रणाली के इन पांच क्षेत्रों के माध्यम से, तीनों चरण (ठोस (बर्फ), तरल और वाष्प) से एक या अधिक में से गुजरता है। चित्र 2.1 में विभिन्न प्रक्रियाओं को दर्शाया गया है।



चित्र 2.1: जल विज्ञानीय चक्र की विभिन्न प्रक्रियाओं का निरूपण।

(स्रोत: जॉन इवान्स एवं हॉवर्ड पेरीमैन, यू.एस.जी.एस.-<http://ga.water.usgs.gov/edu/watercycle.html>)

3000 से अधिक पुराने वैदिक ग्रंथों में जल और 'जलीय चक्र' के मूल्यवान संदर्भ शामिल हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सबसे महत्वपूर्ण अवधारणाओं का उल्लेख ऋग्वेद में विभिन्न श्लोको में इंद्र (नभमण्डल), अग्नि, हवा इत्यादि विभिन्न देवी और देवताओं को संबोधित

श्लोकों एवं प्रार्थनाओं के रूप में किया गया है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद से एक श्लोक इस प्रकार बताया गया है:

आदह स्वाधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधानानामः यज्ञियम ॥ आर.वी, 6.4 ॥

इसका अर्थ है कि जल को, जो सूर्य की गर्मी के कारण छोटे- छोटे कणों में विभाजित हो जाता है, उसे हवा द्वारा ले जाया जाता है और उसके बादल में रूपांतरण के बाद बार-बार वर्षा होती है। ऋग्वेद (आर.वी, आई, 7.3) के एक अन्य श्लोक में कहा गया है कि भगवान ने सूर्य बनाया है और इसे इस प्रकार स्थापित किया है कि पूरा ब्रह्मांड रोशन हो जाता है, ऐसे ही पानी को लगातार निकालने और फिर इसे बादल में परिवर्तित कर अंततः वर्षा के रूप में देना, ब्रह्मांड का नियम है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोह्यादिदति ।
वि गोभिराद्रिमैरयत ॥ आर.वी. I,7.3 II

ऋग्वेद के अग्रलिखित श्लोको में हवा द्वारा पानी के पृथ्वी से वायुमण्डल में हस्तांतरण, सूर्य के किरणों द्वारा जल के छोटे कणों में टूटने और वाष्पीकरण और पुनः आगामी वर्षा (आई, 23.17), मां पृथ्वी से वाष्पित पानी से बादल के बनने और वर्षा के रूप में अपनी मां के पास वापसी (I, 32.9) की व्याख्या की गयी है।

य ईख्ङयन्त पर्वमतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ आर.वी.,I,19.7 II

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वघ्वरम् ॥ आर.वी.,I,23.17 ॥

नीवातयां अभवद्वृत्रपुत्तेन्द्रो अस्या अव अधर्जभार ।
उत्तराः सूरधरः पुत्र आसीददनुः शये सहवत्सानधेनुः ॥ आर.वी.,I,32.9 ॥

ऋग्वेद श्लोक संख्या के I,32.10 में कहा गया है कि पानी कभी एक ही स्थान में नहीं ठहरता है। यह लगातार वाष्पित होता रहता है और नीचे आता रहता है, लेकिन इनके अति क्षुद्र आकार के कारण, हम वाष्पित पानी के कणों को नहीं देख सकते हैं।

ऋग्वेद के निम्नलिखित श्लोक कहते हैं कि सूर्य की किरणें वर्षा का कारण हैं और सूर्य दुनिया के सभी हिस्सों से पानी वाष्पित करता है और सृजन की शुरुआत केवल आग के माध्यम से होती है, जो लगातार पानी के निष्कर्षण और निर्वहन में लगी हुई है ।

अतिष्ठन्तीनाम विवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
बृत्रस्य निष्यं वि चरन्त्यापो दीर्घतम् आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ आर.वी.,I,32.10 ॥

ऋतं देवाय कृष्वते सवित्र इन्द्रायाहिघे न रमन्त आपः ।
अहरह्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥ आर.वी.,II,30.1 ॥

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं ज नित्री विदुष उवाब ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धनुयो यन्त्यर्थम् ॥ आर.वी.,II,30.2 ॥

ऋग्वेद के एक श्लोक में आगे बताया गया है:

या आपो दित्या उत वा स्त्रवन्त खनित्रिमा उत वा याः स्व्यंजाः ।
समुद्रार्या याः शुचवः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥आर.वी.,VII,42.2 II

भावार्थ : जल, जो स्वर्ग से हैं, उनमें से जो अपने आप उत्पन्न होते हैं, उज्ज्वल शुद्ध जल जो समुद्र की ओर जाता है, वे दिव्य जल यहां मेरी रक्षा करें। इन छंदों की तरह, ऋग्वेद के कई अन्य छंद (आर.वी. VIII, 6.19, VIII, 6.20; और VIII, 12.3) जल वाष्पीकरण का कारण, बादल के बनने, वर्षा, पानी के प्रवाह और महासागरों में इसके भंडारण का भी वर्णन करते हैं ।

ऋग्वेद का श्लोक आरवी. X, 27.33 निम्नानुसार है:

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठान्कृन्तत्रादेशामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूषा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम ॥ आर.वी.,X,27.23 ॥

भावार्थ: सृजन की शुरुआत में, सूर्य आदि की उत्पत्ति होती है, आकाश से वर्षा होती है और बादल, वायु और सूर्य के संयोजन से वनस्पति बनती है। सूर्य वाष्प और हवा के रूप में पानी निकालता है, जिससे बादल और वर्षा बनते हैं।

जलीय चक्र के बारे में ज्ञान का आगे विस्तार साम वेद (VI-607) में पाया जाता है। साम वेद का एक श्लोक निम्नानुसार है:

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्व नघस्पृणान्ति ।

तम् शुचिंशुचयो दीदिवांसमपान्पातमुय यन्त्यायः ।।एस.वी.पूर्वाचिकVI,607 ।।

भावार्थः एक प्रकार का पानी ऊपर जाता है और दूसरे प्रकार का पानी नीचे आता है, ये दोनों सूर्य की गर्मी के द्वारा प्रशोधन के बाद वातावरण में जा सकते हैं। ऊपर से वे वर्षा के बाद नदियों में बहते हैं और वहां से समुद्र में संग्रहित हो जाते हैं।

इसी तरह, यजु वेद पानी के बादलों से पृथ्वी तक जल के संचार की प्रक्रिया और सरिताओं के माध्यम से इसके प्रवाह और महासागरों में भंडारण और वाष्पीकरण की प्रक्रिया को बताते हैं (वाई.वी., X-19) ।

प्र पर्वतस्य वृषभष्य पृष्णन्नावश्चरान्ति स्वसिचज्ञयानाः ।

ता आववृत्रन्धरा गुदक्ता अहिं बुहन्यमनु रीयमाणाः

विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ।। वाई.वी.,X-19 ।।

ऋग्वेद, साम वेद और यजु वेद में जलीय चक्र के हिस्से के रूप में अंतःस्पंदन, जल संचार, भंडारण और वाष्पीकरण की अवधारणा स्पष्ट रूप से बताई गयी हैं। अथर्व वेद के समय जल वाष्पीकरण, संघनन, वर्षा, नदी प्रवाह और भंडारण की अवधारणा और चक्र के पुनरावृत्ति को पहले के वेदों में समझाया गया था। अथर्व वेद के अनुसार, सूर्य की किरणों वर्षा और वाष्पीकरण का मुख्य कारण हैं, जैसा कि नीचे उल्लिखित है:

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्ग सूर्यः सह ।

तानो हिन्वन्त्वध्वरम ।। ए.वी., I,5.2 ।।

अथर्व वेद के श्लोक 1, 32.4 में कहा गया है कि वर्षा जल की पृथ्वी में प्रविष्टि और पृथ्वी से वायुमण्डल तक चक्र में निरंतर संचरण सूर्य की किरणों से होता है। श्लोक निम्न प्रकार से है:

विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम् ।

दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ।। ए.वी.,I,32.4 ।।

अथर्व वेद की एक और श्लोक (V, 24.5) में कहा गया है कि ऑक्सीजन के कारण पृथ्वी से पानी वायुमंडल में जाता है और फिर कार्बन डाइऑक्साइड के कारण यह नीचे (वर्षा) आता है।

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ माक्ताम् ।
अस्मन् ब्रह्मण्यसिमन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकृत्यामस्यांमाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ए.वी., V,24.5 ॥

जलविज्ञानीय चक्र जलमौसम विज्ञान का भी एक प्रमुख अंग है । इसे वाराहमहिहिरा की वृहत संहिता (550 ईसवी) में देखा जा सकता है जिसमें तीन अध्याय जलमौसम विज्ञान के लिए समर्पित होते हैं जिनमें बादलों के अंकुरण (अध्याय 21), हवा के अंकुरण (अध्याय 22), और वर्षा की मात्रा (अध्याय 23) शामिल है। डाकारगलम (वृहत संहिता के अध्याय 54) के श्लोक 1 और 2 जो भूजल अन्वेषण के विज्ञान के महत्व को बताते हैं तथा मनुष्य को पानी के अस्तित्व का पता लगाने में मदद करते हैं, इस प्रकार हैं:

धर्म्य यशस्यं च वदाभवतोहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।
पुंसां यथाग्डेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिनसंस्था

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषांत ।
नाना रसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥ वृ.सं., 54.1-2 ॥

पृथ्वी के नीचे जल की शिराएं (कैपिलरी) मानव शरीर में शिराओं की तरह हैं, कुछ ऊंची और कुछ नीची। आसमान से गिरने वाला पानी, पृथ्वी की प्रकृति में अंतर के कारण विभिन्न रंग और स्वाद लेता है । इन श्लोकों का अर्थ है कि पृथ्वी की सतह से शिराओं (कैपिलरी) के माध्यम से वर्षा जल का अंतःस्पंदन भूजल का स्रोत है। महाकाव्य महाभारत (XII, 183.15.16) में बताया गया है कि पानी, आग और हवा की मदद से आकाश में ऊपर उठता है और फिर इसकी आर्द्रता संघनित हो जाती है और बाद में वर्षा का कारण बनता है।

अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिषते जलम् ।
सोग्निमारुतसंयोगाद् घनत्वमुपपद्यते । एम.बी. ,XII,183.15 ॥

तस्याकाशे निपतितः स्नेहस्तष्ठति यो परः ।
स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति ॥ एम.बी. ,XII,183.16 ॥

महाभारत के श्लोक 184.15-16 में कहा गया है कि पौधे अपनी जड़ों के माध्यम से पानी पीते हैं। पौधों में पानी के ऊपर चढ़ने की प्रक्रिया को पाइप के माध्यम से पानी के ऊपर चढ़ने के उदाहरण से समझा जा सकता जाता है। ऐसा कहा जाता है कि पानी के ऊपर चढ़ने की प्रक्रिया को हवा का संयोजन सुगम बनाता है।

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात् ।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विघते रसनं द्रुमे ॥ एम.बी. ,XII,184.15 ॥

वक्त्रेणोत्पलवालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत् ।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः ॥ एम.बी. ,XII,184.16 ॥

महाभारत के श्लोक XII, 362.4 और B में यह समझाया गया है कि हवा और सूर्य की किरणें फैलती हैं और पूरे ब्रह्मांड पर एक साथ गिरती हैं। श्लोक आगे कहता है कि वर्षा के मौसम (चार महीने) में सूर्य के कारण वर्षा होती है और अगले आठ महीनों में उसी पानी को फिर से सूर्य की किरणों से वापस निकाला जाता है। इस प्रकार, यह जलविज्ञानीय चक्र के दोनों रूपों को स्पष्ट रूप से बताता है जैसे कि.

यतो वायुर्विनिः सृत्य सूर्यरश्म्याश्रितो महान् ॥ एम.बी.XII,362.4 ॥

योष्टमासांस्तु शुविना किरणेनोक्षित पयः ।
प्रत्यादत्ते पुनः काले मिश्रचर्यमतः परम् ॥ एम.बी.,XII,362.B ॥

वेदों और महाकाव्यों की तरह, पुराणों में (जो ईसा पूर्व 6 वीं शताब्दी से 7 वीं शताब्दी बीच दिनांकित हैं) हमें विभिन्न संदर्भ मिलते हैं जो उनकी अवधि के दौरान जलविज्ञान के ज्ञान के विकास को दिखाते हैं। मत्स्य पुराण (खंड 1, अध्याय 54) में बताया गया है कि नमी के साथ संतृप्त हवा ही निर्माण (पृथ्वी) का कारण है।

वायवाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः ॥ Matsya I,54.15 ॥

मत्स्य पुराण के श्लोक 1, 54.2 9-34 और वायु पुराण के छंद 51.23-24-25-26 में हमें वाष्पीकरण के ज्ञान के बारे में पता चलता है। इन छंदों के अनुसार, पानी के तपने और उसका वाष्प में रूपांतरण सूर्य की किरणों के कारण होता है जो हवा की मदद से वायुमंडल में ऊपर चढ़ता है, जिससे दोबारा जीवित प्राणियों की भलाई के लिए अगले 6 महीने में वर्षा होती है। विभिन्न श्लोक नीचे दिए गए हैं :

ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चापः सूर्यो वै गृह्यतिष्ठति
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्चताश्चियाः ॥ Matsya I,54.29 ॥

दह्यमानेषु तेष्वेह जग्दमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥ Matsya I,54.30 ॥

तेन चास्त्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।
तेजोभिः सर्वलोकेकेभय आदत्ते रश्मभिर्जलम् ॥ I,54.31 ॥

समुद्राद्वायुसंयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः ।
ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्तन् दिवाकरः ॥ I,54.32 ॥

नियच्छत्यापो मेघेभयः शुक्लाः शुक्लैस्तुरश्मभिः ।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापोवायुनासमुदीरिताः ॥ I,54.33 ॥

ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायुभिस्तनितंचैव विधुतस्त्वग्निजाः स्मृता ॥ मत्स्य I,54.34 ॥

लिंग पुराण में एक पूर्ण अध्याय (I, 36) जल विज्ञान के प्रति समर्पित है। यह वाष्पीकरण, संघनन और वर्षा को बहुत ही वैज्ञानिक रूप से उपयुक्त उदाहरणों के साथ समझाता है और बताता है कि पानी को नष्ट नहीं किया जा सकता है, केवल इसकी अवस्था बदली जा सकती है।

दन्दह्यमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वभ निष्क्रमन्ति ।
या या ऊर्ध्व मारुतेनेरिता वे तास्तास्त्वभांयग्निनावायु च ॥ लिंग I,36.38 ॥

अतो धूमाग्निवातानां संयोगस्त्वमुच्यते ।
वारीणि वर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्त्रदृक् ॥ लिंग I,36.39 ॥

भावार्थः सूर्य से मिलने के बाद, पृथ्वी पर अधिकांश सामग्री में निहित पानी धुएं (वाष्प) में परिवर्तित हो जाता है और हवा के साथ आकाश में चढ़ जाता है और बाद में बादल में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार, वाष्प, आग और हवा का संयोजन बादल बनने का कारण है। इन बादलो के कारण हजारों आंखों वाले भगवान इंद्र के मार्गदर्शन में वर्षा होती है।

इसी प्रकार लिंग पुराण के श्लोक I, 36.66-67 में कहा गया है कि पानी कभी नष्ट नहीं होता है या लुप्त नहीं होता, लेकिन केवल एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जाता है यानी सूर्य की गर्मी से पानी वाष्प में, फिर बादल और इसके बाद वर्षा में परिवर्तित हो जाता है और हवा आदि से वर्षा की कमी होती है अर्थात्।

अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टर्नाताभवदिदवजाः ।
सहस्त्र गुणमुत्स्रष्टूं मादत्ते किरणैर्जलम् ॥ लिंग I,36.66 ॥

जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नातत्येवास्य विचारतः ।
ध्रुवेणाश्रिष्ठतो वायुवृष्टिं संहरते पुनः ॥ लिंग I,36.67 ॥

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि लिंग पुराण में वर्षा, वाष्पीकरण, संघनन, बादल बनने इत्यादि के सुस्पष्ट सिद्धान्त समाविष्ट होने के साथ - साथ यह ज्ञान भी था कि पानी को न तो बनाया जा सकता है, न ही नष्ट किया जा सकता है। लिंग पुराण के अध्याय 41, खंड 1 में साल के महीनों के साथ जलविज्ञानीय चक्र के पहलुओं में परिवर्तन के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है । अर्थात्।

वसंते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपते त्रिभिः ।
वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिस्स्यं प्रवर्षति ॥ लिंग I,41.30 ॥

चैत्रे मासि भवेदंशुर्धाता वैशाखतापन ।
जेष्ठे मासि भवेदिन्द्र आषाढे वार्यमा रविः ॥ लिंग I,41.33 ॥

इसी तरह वायु पुराण में भी जलविज्ञानीय चक्र के मूल्यवान् संदर्भ भी शामिल हैं। वायु पुराण (51.14-15-16) इस प्रकार कहा गया है:

आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिलोकाधानं प्रवर्तते ॥ वायु,51.14 ॥

यत्सोमात्स्त्रवते सूर्य तदभ्रेष्वतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्त जलं भुवि ॥ वायु 51.15 ॥

एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते चं पुनर्जलम् ।
न नाशमु उदकस्यास्ति तदेव परिवर्तते ॥ वायु 51.16 ॥

भावार्थ : सूर्य द्वारा वाष्पित पानी हवा की केशिकाओं के माध्यम से वायुमण्डल में चढ़ जाता है, और ठंडा होकर संघनित हो जाता है। बादलों के बनने के बाद, हवा की शक्ति से वर्षा होती है। इस प्रकार, इन सभी क्रियाओं में पानी नष्ट नहीं जाता है बल्कि एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाता है।

ब्रह्माण्ड पुराण (II, अध्याय 9) में भी जलविज्ञानीय चक्र पर कुछ जानकारी दी गयी है। इसमें कहा गया है कि सूर्य की सात रंगीन किरणें सभी स्रोतों को गरम कर पानी निकालती हैं (II, 9.138-139)। उसके बाद, विभिन्न आकारों और रंगों के बादल बनते हैं। फिर वे उच्च तीव्रता

और अति ध्वनि के साथ वर्षा करते हैं (II, 9.167-168)। इस तरह, सूर्य की आग नियंत्रित होती है।

नावृष्ट्या परिविश्येत वारिणा दीप्यते रविः।
तस्मादयः पिबन्धो वै दीप्यते रविरंबरे ॥ II,9.138 ॥

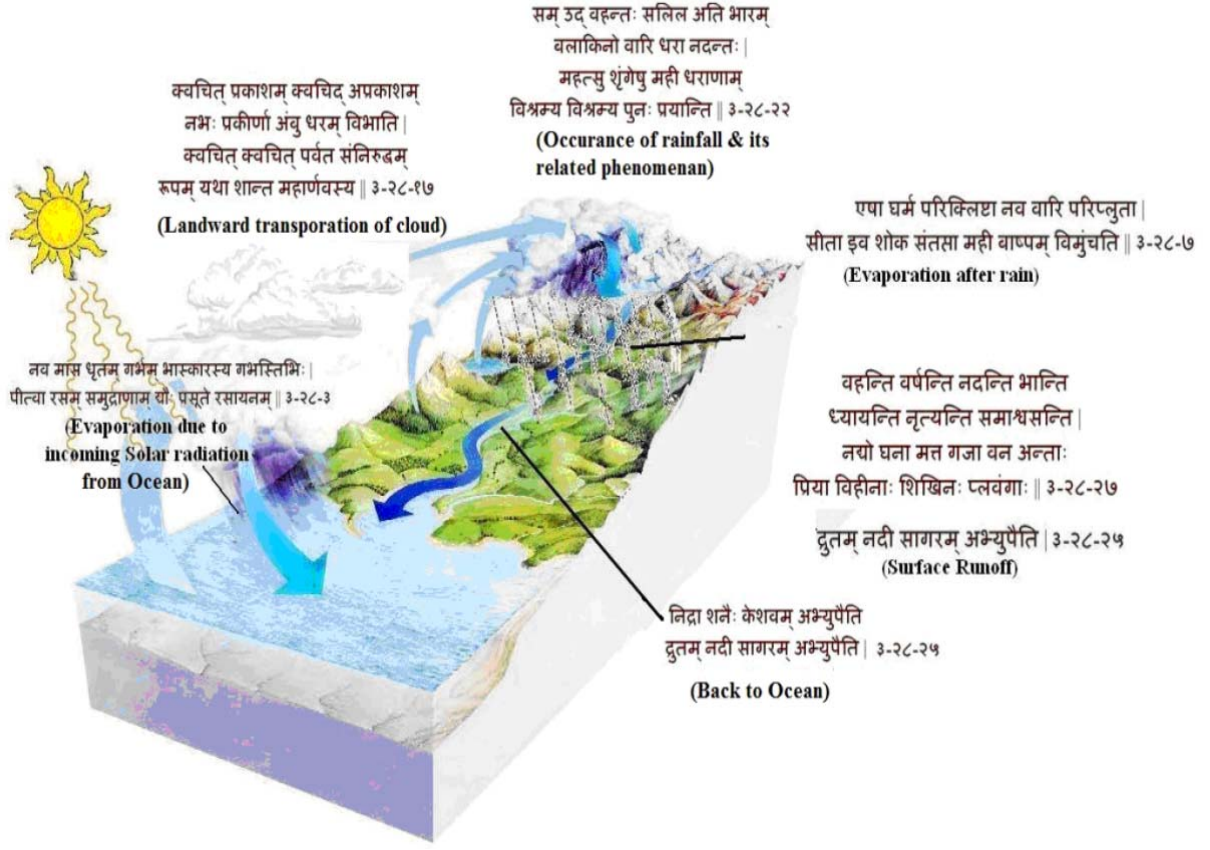
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यंभो महार्णवात्।
तेनाहारेण संदीप्ताःसूर्याः सप्त भवन्त्युत ॥ ब्रह्मांड II,9.1391 ॥

सप्तधा संवृतात्मानस्तमाग्निं शमयन्त्युत।
ततस्ते जलदा वर्ष मुचंति च महौघवत् ॥ II,9.167 ॥

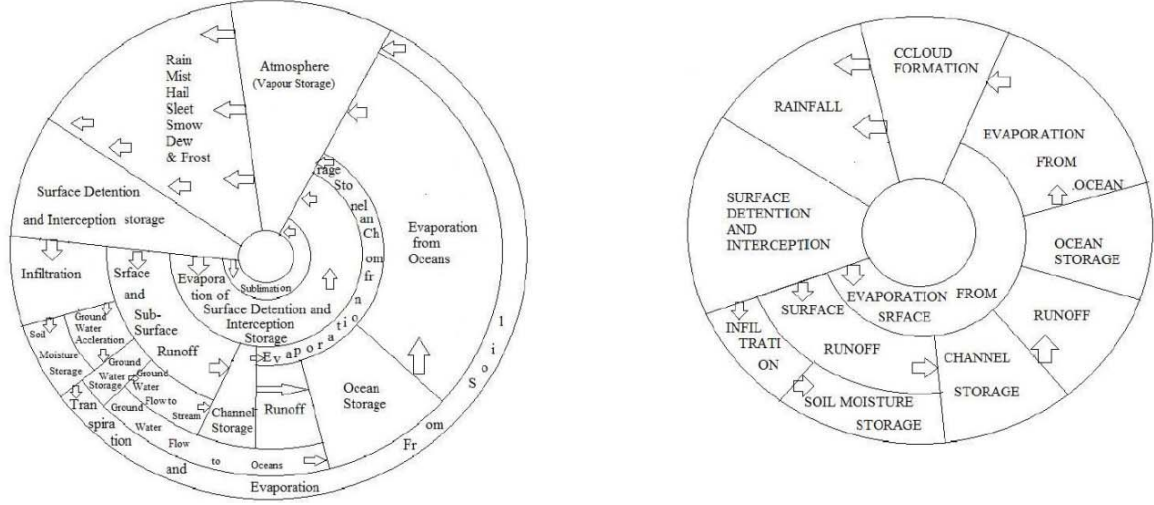
सुघोरमशिवं सर्व नाशयंति च पावकम्।
प्रवृष्टश्च तथात्यर्थं वारिणापूर्यते जगत् ॥ ब्रह्मांड II,9.168 ॥

जलविज्ञान और जलविज्ञानीय चक्र के बारे में विभिन्न प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध ज्ञान कोष अभी भी पूरी तरह से खोजा नहीं गया है। जैसा कि वी.टी.चोव (1974) अगस्त, 1974 में पेरिस में यूनेस्को द्वारा आयोजित संगोष्ठी के दौरान कहा गया "एशिया में जल विज्ञान का इतिहास सबसे अच्छा है और आगे के अध्ययन के लिए इससे बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है"। हालांकि प्रयास निरंतर जारी हैं, पर वे प्रयाप्त नहीं हैं। हाल के एक अध्ययन में, मलिक (2016) ने रामायण महाकाव्य से जलविज्ञानीय चक्र के वैचारिक पहलुओं को खोजने और विश्लेषण करने के प्रयास किए हैं जिसका केंद्र बिंदु महान कवि वाल्मीकि रचित रामायण के किशिकधा कांड के चौथे कांड का 28 वे सर्ग से जलीय चक्र का वैचारिक पहलु हैं। मलिक (2016) द्वारा वाल्मीकि रामायण के किशिकधा कांड से निकाले गए जलविज्ञानीय चक्र के योजनाबद्ध प्रदर्शन चित्र 2.2 में दिखाया गया है।

मलिक (2016) ने जलविज्ञानीय चक्र की आधुनिक अवधारणा की तुलना वाल्मीकि रामायण के दौरान की अवधारणा के साथ की है। तुलना को चित्र 2.3 में दिखाया गया है। दोनो अवधारणाओं के तुलनात्मक विश्लेषण से उन्होंने देखा कि "आधुनिक अवधारणा में सूर्य पूरे साल समुद्र के पानी के साथ अन्य जल ढांचो से पानी को वाष्पित तथा उत्सर्जित करता है। लेकिन महाकाव्य में, उत्सर्जन का कोई संकेत नहीं है। इसके अलावा अपवाह में तुलनात्मक अंतर है जहां वर्तमान अवधारणा अपवाह, अंतःस्पंदन और उप-सतह प्रवाह पर विचार किया गया है। महाकाव्य अवधारणा में अंतःस्पंदन और उप-सतह प्रवाह अनुपस्थित है"। हालांकि, अगर हम इन सीमाओं को अनदेखा करें तो रामायण की अवधारणा उत्कृष्ट और आधुनिक अवधारणा के बहुत करीब है।



चित्र 2.2: वाल्मीकि रामायण के किष्किंधा कांड से लिए गए जलविज्ञानीय चक्र का योजनाबद्ध निरूपण, मलिक (2016)।



चित्र 2.3: आधुनिक जलविज्ञानीय चक्र और वाल्मीकि रामायण में जलविज्ञानीय चक्र अवधारणा के बीच योजनाबद्ध तुलना, मलिक (2016) ।

उपसंहार

इस अध्याय से पता चलता है कि वैदिक युग के दौरान और उसके बाद में महाकाव्य और पुराण के समय जल विज्ञान का ज्ञान अत्यधिक उन्नत था, हालांकि उस समय के लोग आधुनिक रूप से परिष्कृत उपकरणों के बिना, केवल प्रकृति के अपने अनुभव पर पूरी तरह से निर्भर थे। वैदिक युग में, भारतीयों ने इस अवधारणा को विकसित किया था कि सूर्य किरणों और हवा के प्रभाव के कारण पानी सूक्ष्म कणों में विभाजित हो जाता है, जो हवा की केशिकाओं द्वारा वायुमंडल में चढ़ते हैं। वहां यह संघनित हो जाता है और बाद में वर्षा के रूप में गिरता है। जलविज्ञानीय चक्र के पहलुओं में मासिकवार परिवर्तन का ज्ञान भी था। पौधों द्वारा पानी का चूसन जो कि हवा की सहायता से होता है तथा अंतःस्पंदन का ज्ञान प्राचीन साहित्य में प्रकट होता है। उपर्युक्त अध्ययन एवं उदाहरणों से, हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीयों को प्राचीन काल में जलविज्ञानीय चक्र के बारे में सुविकसित अवधारणा का ज्ञान था जबकि समकालीन दुनिया उस समय पानी की उत्पत्ति और पानी के वितरण के बेबुनियाद सिद्धांतों पर निर्भर थी। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय जल विज्ञान के ज्ञान को उस समय की महान उपलब्धि के रूप में माना जा सकता है।

